# प्रसाद के नाटकों में भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य–तत्त्वों का समन्वय

**डॉ. आर.पी. वर्मा,**
*असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,*
*राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा,*
*जनपद–उन्नाव, उ.प्र.*

हिंदी–साहित्य–क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद एक समग्रता के सूचक हैं। उपन्यास, कहानी, नाटक, काव्य इत्यादि साहित्य की प्रायः हर विधा पर प्रसाद का प्रभुत्व दृष्टिगोचर होता है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि उनके नाटक भी काव्यमय हैं। नाटक–क्षेत्र में प्रसाद के अवतीर्ण से हिंदी–नाट्य–साहित्य का कायाकल्प हो गया। प्रसाद की नाट्यकला में भारतीय और पाश्चात्य दोनों प्रणालियों का सुन्दर समन्वय हुआ है। प्रसाद अंधा अनुकरण नहीं करते थे, बल्कि उन्होंने उपयोगी तत्वों का अपने नाटकों में समावेश किया। पश्चिम में प्रचलित शील–वैचित्र्यवाद का अनुकरण न कर, उन्होंने रस–विधान एवं इसका सामंजस्य रखा है। हम जानते हैं कि भारतीय नाटक का प्राण–तत्व रस है, जबकि पाश्चात्य नाटक में संघर्ष की प्रधानता है। प्रसाद के नाटक रस और संघर्ष के मिले–जुले रूप हैं। उनके नाटकों में कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' और सेक्सपियर के 'हैमलेट' दोनों का आनन्द एक साथ मिलता है। उनके नाटकों में पाश्चात्य प्रभाव कुछ तो सीधे पाश्चात्य नाटककारों के सीधे सम्पर्क से आया है तो कुछ बंगला–नाटकों के माध्यम से। पाश्चात्य नाटककारों में इब्सन एवं उनके पसंदीदा नाटककार रहे हैं। रूसी नाटककार 'टॉल्सटॉय' ने भी प्रसाद को काफी हद तक प्रभावित किया है। प्रसाद ने अपने नाटकों में वध, आत्महत्या, युद्ध इत्यादि दृश्यों का खुलकर वर्णन किया है, जो भारतीय नाट्य–शास्त्र में वर्जित हैं। इनके नाटकों के चरित्र भी मनोबैज्ञानिक है। प्रसाद के चरित्र यदि मनोवैज्ञानिक हैं तो संगीत भारतीय पद्धति का है। उन्होंने संगीत का दोतरफा प्रयोग किया है एक ओर वह रस–निष्पत्ति में सहायक है तो दूसरी ओर चरित्रों के अंतर्द्वन्द को अभिव्यक्त करता है।

प्रसाद स्वच्छंदतावादी मनोवृत्ति के साहित्यकार थे। अपनी इसी जीवन–दृष्टि के कारण उन्होंने अपनी नाटकीय रचनाओं में पूर्व एवं पश्चिम दोनों के शास्त्रीय नाट्य–सिद्धान्तों का समन्वय किया है। प्रसाद ने शेक्सपियर एवं द्विजेन्द्रलाल राय (बंगला) के नाटकों की प्रेरणा से नाटक लिखें, जो नाटक–परम्परा में आज ध्रुव माने जाते हैं। शेक्सपियर के नाटकों में जहाँ जीवन के व्यापक एवं संघर्षमय स्वरूप एवं भावना तथा कल्पना से अनुरंजित अभिव्यक्ति है, वहाँ राय ने इसी प्रवृत्ति को अपनाकर भारतीय जीवनवृत्त के सहारे स्वच्छंदतावादी जीवन–दृष्टि

को अभिव्यक्त किया है। शेक्सपियर के स्वच्छंदतावादी नाटकों का मूल तत्व संघर्ष है और इसी संघर्ष की अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में बाह्यद्वंद्व एवं अंतर्द्वन्द के रूप में हुई है। प्रसाद ने अपने नाटकों में इन्हीं द्वंदों को स्थान दिया है। जीवन के व्यापक स्वरूप का चित्रण करने से नाट्यकला की कथावस्तु, चरित्र–चित्रण, मनोद्वेग, रचनाशैली इत्यादि सभी तत्वों में नवीनता का सूत्रपात हुआ। पाश्चात्य नाटककारों से प्रभावित होते हुये भी प्रसाद ने अपने देश के साहित्यिक आदर्श को नहीं छोड़ा है। आधुनिक साहित्य के चरित्र–चित्रण, जिसमें यथार्थवादी पद्धतियों का विकास हो रहा था, उसका विरोध करते हुये प्रसाद ने रस–निष्पत्ति के सहारे नाटक में व्यक्ति और उनके चरित्र–वैचित्र्य की सृष्टि की। रस–निष्पत्ति (आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति) से ही जीवन के प्रति आनंदवादी भावना जाग्रत् होती है, प्रसाद ने साहित्य का यही आदर्श मानते हुये पाश्चात्य साहित्य के जीवन के संघर्षमय स्वरूप के चित्रण के आदर्श को अपने देश की इसी साहित्यिक दृष्टि से समन्वित कर ग्रहण किया है। प्रसाद ने साहित्यिक दृष्टि की प्रेरणा से, भारतीय इतिहास के इतिवृत्तों का अपने नाटकों में उपयोग किया है।

## भारतीय आचार्यो की दृष्टि में नाटकीय तत्व

'नाट्य–शास्त्र' के प्रणेता भरतमुनि और उनके परवर्ती आचार्यो ने नाटक के निम्न तत्व स्वीकार किये हैं :–

संवाद, गान, नाट्य और रस। परवर्ती आचार्यो ने केवल तीन ही तत्व–वस्तु, नेता (पात्र एवं नायक) और रस स्वीकार किये हैं। कुछ आचार्यो ने अभिनय तथा वृत्ति को भी नाटक का तत्व माना है।

वस्तु का अर्थ है कथानक, कथा या कहानी। नेता का अर्थ है पात्र अर्थात् नायक। नायक चार तरह के होते हैं – धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशांत और धीरोद्धत। रस नाटक का प्रमुख तत्त्व है। भारतीय नाट्यशास्त्र में नाट्य–रचना का उद्देश्य यही रसानुभूति है।

अभिनय–यह रंगमंच पर कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह चार तरह का होता है – आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक।

वृत्ति–नाटक की मूल प्रकृति ही वृत्ति कहलाती है। यह चार तरह की होती है – कौशिकी (श्रृंगार, हास्य–गीत, नृत्यप्रधान) वृत्ति, सारवती (सौर्यदानादि प्रधान) वृत्ति, आरभटी (माया–क्रोध–संघर्ष प्रधान) वृत्ति और भारतीय (स्त्री–पात्रविहीन) वृत्ति।

यह भारतीय नाट्य–पद्धति है।

## पाश्चात्य आचार्यो की दृष्टि में नाटक के तत्व

पाश्चात्य आचार्यो ने नाटक के छह तत्व माने हैं – कथावस्तु, पात्र और चरित्र–चित्रण, कथोपकथन या संवाद, देशकाल, उद्देश्य तथा शैली। पाश्चात्य आचार्यो का कथावस्तु–संबंधी

दृष्टिकोण भारतीय आचार्यो के समान हैं। पाश्चात्य नाटकों में चरित्र पर उतना ही बल दिया जाता है, जैसा भारतीय नाटकों में रस पर। भारतीय वाचिक पश्चिमी कथोपकथन है। कथन के विकास एवं चरित्र–चित्रण के लिये यह आवश्यक तत्त्व है। संकलनत्रय ही देशकाल है। पाश्चात्य नाटकों में उद्देश्य अनिवार्य तत्व है, क्योंकि इसी के अनुरूप नाटकों में संघर्ष को प्रधानता मिलती है। भारतीयों ने इसे ऐसे ही ग्रहण किया है। शैली ही भारतीय दृष्टिकोण से वृत्त है। अभिव्यक्ति–प्रणाली ही नाटककार का उद्देश्य होता है, यही प्रणाली वृत्त है।

इस प्रकार दोनों आचार्यो के नाट्य–तत्वों के समन्वित रूप में ज्यादा अंतर नहीं है। पाश्चात्य नाट्य–तत्वों का समावेश भारतीय तत्त्वों के अंतर्गत हो जाता है।

कथावस्तु वस्तु में, पात्र नेता में, कथोपकथन वाचिक अभिनय में, देशकाल आहार्य अभिनय में और उद्देश्य रस में समा आता है, क्योंकि पश्चिमी नाटक उद्देश्यपरक हैं तो भारतीय नाटक रसपरक।

इस प्रकार हिंदी–नाटक पाश्चात्य नाटकों से प्रभावित हैं, यथा–रस के स्थान पर उद्देश्य की प्रधानता, चरित्रों का वैशिष्ट्य, शैली–शिल्प इत्यादि।

प्रसाद ने जब नाटकों की शुरूआत की, उसके पहले उन्होनें चार एकांकी रूपक लिखे थे – 'सज्जन', 'प्रायश्चित', 'कल्याणी–परिणय' और 'करूणालय' इत्यादि। 'सज्जन' का कथानक महाभारत के अंश–विशेष पर आधारित है। 'प्रायश्चित' का कथानक इतिहास की एक किंवदंती पर आश्रित है। इसमें जयचंद एवं पृथ्वीराज की कहानी है। पहले एकांकी में जहां दुर्योधन दुराग्रही का स्वरूप अहंकारी और भ्राताओं से द्वेष रखनेवाला है, जिसे हम पाप की संज्ञा दे सकते हैं, दूसरी तरफ सज्जनता के अवतार, पशुताओं से सर्वथा, सज्जन एवं बुद्धिमान् युधिष्ठिर हैं, जो पुण्य में अनुरक्त हैं।

'प्रायश्चिक' में नांदीपाठ और सुत्रधार द्वारा नाटक का आरंभ नहीं किया गया है। अंत में प्रशस्ति द्वारा समाप्ति भी नहीं रखी गई है। कल्याणी–परिणय ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित है। इसमें नायक का लक्ष्य विजय प्राप्ति है और फल के रूप में विजय के साथ–साथ चंद्रगुप्त को एक प्रेमिका और जीवन संगिनी भी मिल जाती है।

'करूणालय'–दृश्यकाल गीतिनाट्य के ढंगपर लिखा गया है। इस रचना में नाटकीय अंश की न्यूनता औश्र कहानी–तत्व की प्रधानता है। यह कथोपकथन द्वारा पद्य में लिखी कहानी है।

इस प्रकार इनकी प्रारंभिक एकांकी–रचनाओं में पाश्चात्य प्रभाव संस्कृत–नाट्य में वर्जित युद्ध, आम्तघात इत्यादि के दृश्यों की अवतारणा औश्र अंमित रचना में दुःखंत का रूप प्रकट हुआ है।

## राज्यश्री

सन् 1915 में प्रसाद ने एक बड़ा नाटकीय प्रयोग किया 'राज्यश्री' के रूप में। इस नाटक की प्रमुख पात्र राज्यश्री है। राज्यश्री के पति मौखरी गृह वर्मा की हत्या मालव नरेश देवगुप्त के हाथों होती है। भाई राजवर्धन भी गौड़ाधिप शशांक (नरेंद्र गुप्ता) के हाथों मारा जाता है। शशांकराज्यश्री को कारागृह से मुक्त कर देता है। हर्षवर्धन अपनी बहन की खोज करता है और अंत में उसे ढूँढ़ निकालता है, जब वह चिता में जलना जा रही थी। बाद में दोनों भाई–बहन मिलकर लोकसेवा में रत हो जाते हैं।

इस नाटक में पूर्व और पश्चिम का अपूर्व समन्वय है.....

इस नाटक में भारतीय रीति की भांति प्रारंभ में नांदीपाठ है, अंत में प्रशस्ति–वास्य है। इस समस्त नाटकीय व्यापार में आपत्तियों की एक आँधी चलती है, जिसमें लेखक की अप्रौढ़ रचना–चातुरी अपने बल पर नहीं खड़ी रहती है। इसमें राजवर्धन, गृहवर्मा इत्यादि की हत्या को दिखाकर लेखक अपने स्वच्छंतावादी दृष्टिकोण का परिचय देते हैं, क्योंकि भारतीय पद्धति में हत्या आदि भावनाएं निषिद्ध मानी गई हैं। परन्तु 'राज्यश्री' नाटक में राज्यवर्धन एवं गृहवर्मा की हत्या होती है। इस नाटक में प्रेस का स्वच्छंद रूप प्रकट हुआ है। सुरमा एक ऐसी ही नारी है, जो देवगुप्त में स्वच्छंद प्रेम प्रकट करती है। देवगुप्त असत् का प्रतीक है और सत् पर असत् कभी विजय प्राप्त नहीं करता। भिक्षु विकट घोष भी राज्यश्री के रूप की ज्वाला में जेलकर डाकू बन जाता है। राज्यश्री नाटक में राज्यश्री का चारित्रिक विकास है। वह संसार की मंगल कामना में प्रवृत्त दिखाई देती है।

हर्षवर्धन–सन् का प्रतीक है। कर्तव्य ज्ञान ने उसमें संतोष की वृत्ति उत्पन्न कर दी है – 'यदि इतने ही मनुष्यों को मैं सुखी कर सकूँ, राज्धर्म का पालन कर सकूँ तो कृत–कृत्य हो जाऊँगा।'

हर्ष में मनुष्योचित भावुकता के साथ फल प्राप्ति की कामना भी है। हर्ष के व्यक्तित्व में राजशक्ति के मद का प्रदर्शन नहीं, मर्यादा–रक्षा की भावना है। शुद्ध मानव व्यवहार का आदर्श यही भावना है।

इन पात्रों के अतिरिक्त शांतिदेव एक ऐसा पात्र है, जो परिस्थिति एवं घटनाओं के घात के घात–प्रतिघात के कारण मनुष्य कोटि से गिर जाता है। वह कहता है – सब बात तो यह है कि मुझे अपने सुख के लिए सब कुछ करना अभीष्ट है।'

देवगुप्त आचरणभ्रष्ट, कामुक और प्रयंचक है। वह सुरमा से अपना स्पच्छंद प्रेम प्रकट करता है, यह प्रेम भारतीय पद्धति के प्रतिकूल है –

'सुरमा ! मेरे जीवन में ऐसा उन्मादकारी अवसर कभी न आया था। तुम यौवन, स्वास्थ्य और सौंदर्य की छलकती हुई प्याली हो – पागल

न होना ही आश्चर्य है, मेरे साहस की विजयलक्ष्मी।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'राज्यश्री' में प्रसाद ने शेक्सपियर भी भांति जीवन के स्वच्छंद प्रेम से युक्त संघर्ष, चरित्र, मनोवेगोंु की अभिव्यक्ति, देशकाल की योजना और स्वगत कथनों में अंतर्द्वंद्व की अभिव्यक्ति नियतिवाद की स्वीकृति है तथा इस पर संस्कृत नाट्यशास्त्र की गहरी छाप है, जिसके कारण प्रसाद की स्वच्छंदतावादी वृत्ति एवं पाश्चात्य नाट्यतत्व के ग्रहण की प्रवृत्ति काफी बाधित हुई है। संस्कृति नाट्यशास्त्र में वध की वर्जना है, इसलिए ये दृश्य प्रस्तुत नहीं किए गए हैं, बस सूचनाभर है। इसमें प्रसाद भारतीय एवं पश्चिमी नाट्यकला के मिले जुले प्रभाव को लेकर निज के नाटकीय दृष्टिकोण के निर्माण का प्रत्यत्न करते हुए दिखाई देते हैं।

## विशाख

'विशाख' जयशंकर प्रसाद का दूसरा नाटक है, जो सन् 1921 में लिखा गया। इसकी कथा कल्हणकृत 'राजतरंगिणी' से ली गई है। इसकी कथावस्तु में भी स्वच्छंद प्रेम और जीव के संघर्षमय स्वरूप का समन्वय है। प्रसाद की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के अनुकूल इस नाटक की प्रणय–कहानी में सामान्य और विशेष का संघर्ष है। नाटक का आरंभ ही नायक के अंतर्द्वंद्व से होता है –

'शैशव ! जबसे तेरा साथ छूटा, तबसे असंतोष, अतृप्ति और अटूट अभिलाषाओं ने हृदय को घोंसला बना डाला। इन विहंगमों का कलरव मन को शांत होकर थोड़ी देर भी सोने नहीं देता। यौवन सुख के लिए आता है – यह एक भारी भ्रम है।'

इस नाटक में प्रसाद ने नया चरित्र दिखाया है, जो उनकी मौलिक देन है – प्रेमानंद का चरित्र। यही प्रेमानंद इस नाटक को आद्योपांत दार्शनिकता से ओतप्रोत बनाए रखता है। इस नाटक में तत्कालीन वातावरण का अति सुंदर वर्णन है। इस नाटक की विशेषता यह है कि सभ बौद्ध भिक्षु पतनशील हैं। समग्र रूप में 'विशाख' पर अधिक पाश्चात्य प्रभाव होते हुए भी इसकी रचना–शैली पर संस्कृत–नाट्यशास्त्र का पर्याप्त प्रभाव है। इसमें विशाख द्वारा महापिंगल के वध का दृश्य रंगमंच पर प्रस्तुत कर दिया गया है। उदाहरण, सैनिक–देखता नहीं है–राजानुचर महापिंगल का यह शव है। इसी विशाख ने अभी इसकी हत्या की है। यही महापिंगल संस्कृत नाटकों का विदूषक है तो पाश्चात्य सुखांतिकियों के स्वच्छंद प्रेम की भावना से ओतप्रोत नायकों का व्यवहार कुशन अनुचर (बैलेट) है।

## अजातशत्रु

यह नाटक प्रसाद के पूर्ववर्ती नाटकों से पृथक है। इस नाटक में मगध, काशी, कौसल, कौशांभी इत्यादि राज्यों की कहानी एक साथ चलती है। इस नाटक पर और भी ज्यादा पाश्चात्य प्रभाव

है। इसमें उन्होंने संतति की अकृतज्ञता अथवा विद्रोह का चित्रण किया है। यदि यह कहें कि इस नाटक में सर्वत्र क्रांति का विकट घोष सुनाई पड़ता है तो यह अतिशयाक्ति नहीं होगी। यह क्रांति सामाजिक क्षेत्र में अभिजात के विरूद्ध निम्नवर्ग की है और राजनीतिक क्षेत्र में राजाओं के विरूद्ध राजकुमारों की है। द्वंद ही संघर्ष, विरोध, युद्ध इत्यादि में प्रकट होता है। सत्–असत्, पाप–पुण्य, न्याय–अन्याय, राग–विराग को लेकर उठने वाला मानसिक द्वंद्व ही अंतर्द्वंद्व है और इस द्वंद्व को जीतने वाला चरित्र ही अनूठा होता है। यही पाश्चात्य नाटककार भी स्वीकार करते हैं। इस नाटक में दिंबसार और वासवी ऐसे ही चरित्र हैं। निम्न उदाहरण से उसकी मनः स्थिति का अच्छा उद्घाटन होता है–'मैंने राजदंड छोड़ दिया है, किंतु मनुष्यता ने अभी मुझे नहीं परित्याग किया है। सहन की भी एक सीमा होती है।'

विरूद्वक अजातशत्रु से अधिक चारित्रयपूर्ण है। मल्लिका, मागधी, छलना, वासवदत्ता इस नाटक की स्त्री–पात्रा हैं। मागधी अपने ढ़ंग की निराली है। वह आत्महत्या कर लेती है। इसमें स्वच्छंद प्रेम भी है। उदाहरण, समुद्र : ' तुम्हारे रूप की ज्वाला ने मुझे पतंग बनाया था, अब उसी में जलने आया हूं।'

## कामना

'कामना' नाटक में पाश्चात्य नाट्य–तत्वों का समावेश है। कथावस्तु में संघर्ष है। इसमें विवेक के मानसिक उद्वेलन से प्रकृति के प्रांगण में भूकंप की सृष्टि दिखाई गई हइस नाटक की समाप्ति भी सुखांत एवं भरत–वाक्य से होती है।

## जनमेजय का नागयज्ञ (1926)

इस नाटक में पश्चिमी स्वच्छंदतावाद का अन्मुक्त रूप मिलता है। शेक्सपियर के नाटों की भांति इसमें महत्वाकांक्षा, प्रतिहिंसा एवं प्रतिशोध की प्रेरणा से जीवन के संघर्षमय स्वरूप का चित्रण है। प्रतिहिंसा एवं प्रतिशोध की भावना के फलस्वरूप आर्यों और नाग जाति का संघर्ष हुआ। इसमें उन्होंने शेक्सपियर की भांति नियति को माना है। जनमेजय, सरमा, ऋषि सभी इस नियति की व्याख्या अपने–अपने ढंग से करते हैं।

उदाहरण, जरत्कारु ऋषि कहते हैं – "अदृष्ट की लिपि ही सब कुछ कराती है। कर्मफल तो स्वयं समीप आते हैं, उनसे भागकर कोई बच नहीं सकता। मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है।" सरमा भी एक जगह कहती है – "मैं इस अदृष्य शक्ति का यंत्र है, वह जो मेरे साथ है, मुझसे कोई काम कराना चाहता है।" शेक्सपियर ने मानव–क्रियाओं को नक्षत्रों से प्रसूत माना है।

'It is the stars, The stars above us govern our conditions.'

इसकी रचना शैली का अनुसरण है। दोनों पक्षों (भारतीय एवं पाश्चात्य) के बीच सौहार्द की स्थापना ही प्रसाद की नाट्य–शैली की

विशेषता है। इसका मूल तत्त्व संघर्ष है। इस नाटक का अंत विश्व–नियंता के गुणगान से होता है –

लय हो उसकी, जिसने अपना विश्व–रूप विस्तार किया।
आकर्षण का प्रेम नाम से सबमें सरल प्रचार किया।
पूर्णानुभव कराता है जो 'अहमिति' से निजसत्ता का।
'तू मैं ही हूँ' इस चेतना का प्रणव–मध्य गुंजार किया।

## स्कंदगुप्त विक्रमादित्य

इस नाटक का बीज 'जनमेजय का नागयज्ञ' में विद्यमान है। इसमें भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों नाट्य–कलाओं का सहज समन्वय है। कथावस्तु में वैचित्र्य की प्रधानता है, कथाप्रवाह में कमी है (इसमें भी स्कंद कुंभा की लहरों में बह जाता है), किंतु इसका अंत करुण सुखांत (टैजिकॉमेडी) है, क्योंकि यदि अंगरेजी नाट्य–शैली अपनाई जाती तो फिर भारतीय पद्धति का निर्वाह कैसे होता।

'अधिकार–सुख्या कितना मादक और सारहीन है' इसी एक वाक्य से स्कंद का मानसिक उद्वेलन प्रत्यक्ष हो जाता है। संघर्ष की दृष्टि से स्कंद को बाह्य संघर्ष (विमाता अनंतदेवी) करना पड़ता है। घटनाओं का घात–प्रतिघात दैवयोग पर आधारित है। शेक्सपियर की रचनाओं के नाटकीय प्रसंग इन्हीं से प्रेरित है।

प्रसाद का दृष्टिकोण रसवादी है, जो भटार्क को भी सन्मार्ग पर ले आता है। इसमें कथावस्तु पश्चिमी नाटकों की तरह व्यापक है। विजया एवं देवसेना प्रेम के दो विरोधी स्वरूप हैं। प्रपंचबुद्धि एवं प्रख्यात कीर्ति बौद्ध धर्म के दो विरोधी स्वरूपों का उद्घाटन करते हैं। इसका मूलतत्व संघर्ष है। इसमें राज–परिवार के सात चरित्र कुमारगुप्ता, गोविंद, स्कंद, बंधुवर्मा, पुरगुप्त, भीमवर्मा और कुमार दास आकाश में स्थित इंद्रधनुष के विभिन्न वर्णो की भांति अपनी विशेष पहचान रखते हैं। 'स्कंदगुप्त' एवं 'चन्द्रगुप्त' दो नाटकों का कार्य–विस्तार काफी विस्तृत है।

## एक घूँट (1939)

इसमें आनंदवाद की स्थापना काव्यात्मक शैली में हुई है। यह अपने बाहरी रूप और अंतरंग दोनों में ही पश्चिम के आधुनिक बुद्धिवादी नाटकों के प्रभाव से प्रभावित है। इब्सेन एवं शॉ ने नारी–पात्रों को शक्ति दी है, इसका सम्पूर्ण प्रभाव प्रसाद पर दिखायी देता है। इसमें बनलता का द्वंद्व स्पष्ट है –

'मैं जिसे प्यार करती हूँ वही, केवल वही व्यक्ति – मुझे प्यार करे, मेरे हृदय को प्यार करे, मेरे शरीर को, जो मेरे सुंदर हृदय का आभरण है – सतृष्ण देखो, यदि इसे प्रतीकात्मक एकांकी कहें तो उत्तम होगा। इसमें एक ही दृश्य है।

## चंद्रगुप्त मौर्य (1931)

इस नाटक में बाह्य संघर्ष की प्रधानता है। प्रसाद जिस प्रवृत्ति एवं उद्देश्य को लेकर नाटक–निर्माण में प्रवृत्त हुये थे, उसका चरमोत्कर्ष 'चन्द्रगुप्त' नाटक में हुआ है। चंद्रगुप्ता का एक पात्र–चाणक्य, प्रसाद की सबसे बड़ी देन है। वह एक जगह कहता है – 'महात्वाकांक्षी का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है।'

प्रसाद का चाणक्य नंद तथा विदेशी यूनानियों के अत्याचार एवं आक्रमण से राष्ट्र का उद्धार करके लोक में शांति की स्थापना करता है। इसके पीछे पाश्चात्य नाटक के मूलतत्त्व संघर्ष एवं भारतीय नाट्य–परम्परा के रसतत्त्व के समन्वय की प्रेरणा है। इस नाटक की कथावस्तु पर शेक्सपियर की एक रचना 'ट्रीटस इंडोनिक्स' का प्रभाव है। इस नाटक की वस्तु–योजना शिथिल है। उसमें काल–संकलन का अभाव है। पर्वतेश्वर के हाथों आत्महत्या करने की कोशिश दिखाकर प्रसाद नाटक में पाश्चात्य स्वच्छंदतावाद का परिचय देते हैं।

## ध्रुवस्वामिनी (1937)

यह इनकी अन्तिम कृति है। इस रचना में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में आधुनिकी नारी के जीवन की एक समस्या का बौद्धिक विश्लेषण किया गया है। इब्सन ने पाश्चात्य नाटक में बुद्धि–तत्व की स्थापना कर एक नई यथार्थवादी नाट्य–शैली का सूत्रपात किया था, जिसमें दृश्य के प्रारम्भ में विस्तृत रंग–संकेत देने की परम्परा का निर्वाह हुआ था। इस नाटक में यही नाट्य–शैली है। इस नाटक में प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी वे वैवाहिक जीवन का अवांछनीय परिस्थिति के प्रति नारी के सफल विद्रोह का चित्रण किया है और इसके रूप में निखार लाने के लिये तुलनात्मक विरोध में कोमा के शकराज के प्रति आदर्शवादी स्नेह–भाव को प्रस्तुत किया है। इब्सन के नाटक 'The Dools House' की नायिका नोरा अपने व्यक्तित्व के प्रति जिस प्रकार सजग है, कुछ वैसी ही स्थिति ध्रुवस्वामिनी की है। वह एक जगह कहती है – 'पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु–संपत्ति समझ कर उन पर अत्याचार करने का जो अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता।'

ध्रुवस्वामिनी अपनी इस अवस्था का दोषी नियति को ठहराती है –

'जीवन के लिये कृतज्ञ, उपकृत और आभारी होकर किसी के अभिमानपूर्ण आत्मविज्ञापन का भार ढोती रहे, यही क्या विधाता का निष्ठुर विधान है। जीवन नियति के कठोर आदेश पर चलेगी ही।'

प्रसाद के सभी मुख्य नाटकों में कूटनीति एवं अंतर्द्वन्द देखने को मिलता है। घटनायें स्वाभाविक मार्ग बनाती चलती हैं। घटनाओं में युद्ध का कोलाहल, शांति, क्रोध, हत्या है, तो कहीं क्षमा, प्रेम और सेवाभावना है।

भारतीय पद्धति के अनुसार लक्ष्य–प्राप्ति का उद्योग, निगति एवं समाप्ति का अवलम्बन लेकर वस्तु की सृष्टि में इतिहास एवं कल्पना का समावेश है।

चरित्र–चित्रण की दृष्टि से प्रसाद के पात्र तीन श्रेणियों में विभक्त हैं – देवता, दानव एवं मानव। प्रसाद के प्रत्येक नाटक में ऐसे महात्मा अवश्य मिलेंगे, जो उस समय के तत्व–चिंतन के प्रतीक हैं। यथा – विशाख – प्रेमानंद, जनमेजय का नागयज्ञ – वेदव्यास, राज्यश्री – सुयेनच्वांग, अजातशत्रु – बुद्ध, चंद्रगुप्त – दांडयायन।

दानव पात्रों में – काश्यप, देवदत्त, विजय, रामगुप्त इत्यादि हैं। मानवों में – अजातशत्रु, पुरगुप्त, भट्टार्क, नरदेव इत्यादि हैं।

समग्र आकलन करने पर हम यह देखते हैं कि राष्ट्रीय भाव–बोध की अभिव्यक्ति प्रसाद के नाट्य–विधान का मूलाधार है।

'अजातशत्रु', 'स्कंदगुप्त' एवं 'ध्रुवस्वामिनी' नाटकों में प्रसाद ने सांप्रदायिकता की भावना, प्रादेशिकता के तनाव तथा पुरुष–नारी के बीच असमानता की स्थिति, इन्हीं का समाधान देने का यत्न किया है। सांप्रदायिक विद्वेष का चित्र ब्राह्मण एवं बौद्धों के संघर्ष के बीच दिखायी देता है, यह 'स्कंदगुप्त' एवं 'चंद्रगुप्त' में दर्शनीय है। प्रसाद ने हिंदी की स्वतंत्र नाट्य–कला का रूप हमारे सामने रखा है। शेक्सपियर एवं इब्सन में इनकी रुचि रही है। शेक्सपियर की तरह मानव–मन के व्यापक उद्‌घाटन के आदर्श को लेकर प्रसाद जी ने वीर–भावना ऐतिहासिक आख्याओं के साथ प्रासंगिक प्रेमकथाएं जोड़ दी हैं। प्रसाद जी ने पश्चिमी नाटककारों का प्रभाव एक मौलिक प्रतिभा–सम्पन्न साहित्यकार के रूप में ग्रहण किया है। वह स्वयं स्वच्छंदतावादी थे, अतः उनके सभी नाटकों में इस प्रवृत्ति का मिलना काफी सरल है। युग–विशेष की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का व्यापक चित्रण इनके सभी नाटकों में मिलता है, इसलिये इनके नाटक भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य–तत्वों से सुसज्जित एवं समन्वित है। यदि हम डॉ. जयनाथ नलिन के शब्दों में कहें तो – 'नाटक की स्वस्थ, साहित्यिक कलापूर्ण, स्वाभाविक, मौलिक और स्वाधीन रूप देने का सर्वप्रथम श्रेय प्रसाद की प्रतिभा को ही है। जय हो शंकर की, जिसने हिंदी–साहित्य को प्रसाद के रूप में 'प्रसाद' जैसा साहित्य–शिरोमणि दिया।

## संदर्भ


- ✓ हिंदी नाटक का आत्म संघर्ष
- ✓ रंगमंच का सौन्दर्यशास्त्र – देवेन्द्रराज अंकुर
- ✓ हिंदी–साहित्य की भूमिका – हजारी प्रसाद द्विवेदी
- ✓ हिंदी काव्य के प्रमुख कवि – डॉ. आर.पी. वर्मा
- ✓ प्रसाद के नाटक – चंद्रगुप्त, अजातशत्रु, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, जनमेजय का नागयज्ञ

- ✓ हिंदी नाटक, उद्भव एवं विकास – डॉ. दशरथ ओझा
- ✓ हिंदी नाटक – डॉ. बच्चन सिंह
- ✓ प्रसाद जी की नाट्य–कला – डॉ. गुलाब राय
- ✓ विचार और अनुभूति – डॉ. नगेन्द्र
- ✓ प्रसाद के नाटक रचना और प्रयोग – डॉ. ज्योत्सना प्रसाद
- ✓ प्रसाद युगीन हिंदी नाटक – डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल
- ✓ जयशंकर प्रसाद – आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी
- ✓ हिंदी नाटक का आत्म–संघर्ष – गिरीश रस्तोगी


*Copyright © 2017, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.*